सामायिक करने की विधि

(संकलन कर्त्ता)

शरीर से शुद्ध होकर शुद्ध वस्त्र पहनकर किसी मन्दिर आदि एकान्त स्थान में सामायिक करना चाहिये। प्रत्येक दिशा में तीन आवर्त व एक शिरोनति करके नमस्कार पूर्वक अपने आसन पर बैठना चाहिये। पश्चात् सामायिक की प्रत्येक क्रिया को मनन पूर्वक करना चाहिये मन को पवित्र रखना चाहिये, जब तक सामायिक पूर्ण न हो अपने आसन को न छोड़ें न छोटे बालकों को अपने पास ही बैठावें।

सामायिकके बाद एक वृहत् कायोत्सर्ग, करें जिसमें कम से कम २७ बार या १०८ बार णमोकार मन्त्र का जाप करना चाहिये। सामायिक के समय दृष्टि व मन पर कड़ा नियन्त्रण रखना चाहिये। अन्त में पूर्ववत् ही दिशावन्दन कर सामायिक समाप्त करना चाहिये।

अथः सामायिक पाठ प्रारंभ

णमो अरहंताणं, णमोसिद्धाणं, णमोआइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।

चत्तारि मंगलं, अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो, धम्मो मंगलं ।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंतलोगुत्तमा,
सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,
केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि,
अरहंत सरण पव्वज्जामि,
सिद्ध सरणं पव्वज्जामि,
साहू सरणं पव्वज्जामि,

केवलिपणत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।
ह्रौं सर्व शान्ति कुरु कुरु स्वाहा ।।

भावार्थः- अरहंत सिद्ध आचार्य, उपाध्याय सर्व साधुओं को नमस्कार हो। संसार में अरहंत, सिद्ध साधु, केवलिप्रणीत, धर्म ये ही चार मंगल रूप हैं। ये ही चार उत्तम हैं। ये ही चार परम शरण हैं। ये सर्व प्रकार शांति करें।

(इर्यापथ शुद्धि पाठ)

श्लोकः- इर्या पथे प्रचलिताद्य मया प्रमादा,
देकेन्द्रिय प्रमुख जीवनिकाय बाधा।
निर्वतिता यदि भवेद युगान्तरेवा,
मिथ्यातदस्तु दुरितंगुरु भक्ति तो मे ।।

भावार्थः- हे भगवान्! मार्ग में चलते हुवे मुझ से प्रमाद वश बिना देखे एकेंद्रियादिक जीव की हिंसा हुई हो तो, वह आपकी भक्ति से मिथ्या होवे।

(इर्यापथ प्रति क्रमण)

पडिक्कमामि भंत्ते ईरियावहियाये विराहणाये अणुगुत्ते अइग्गमणे णिग्गमणे ठाणेगमणे चक्कमणे पाणुगमणे बीजुग्गमणे हरिदुग्गमणे उच्चार पस्सवण खेल सिंघाणय वियडी पयिठ्ठवणाये जे जीवा एइन्दिया वा बेइन्दिया वा तेइंदिया वा चउरिंदिया वा पचेंदियावा णोल्लिदा वा पिल्लिदा वा संघादिदा वा ओद्दाविदा वा परिदाविदा वा किरिंच्छिदा वा लोस्सिदा वा छिदिदा वा भिन्दिदा वा टाणदो वा ठाण-चक्कमणदो वा तस्स उत्तर गुणं तस्स पायछित्तिकरणं तस्स विसोही करणं जाव रहंताणं भयवँताणं णमोकारं करेमि।

भावार्थः- हे भगवान ! मेरे चलने में जीवों की हिंसा हुई हो उसके लिये मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

यथा मन-वचन काय को वश में न रखने, बहुत चलने, इधर उधर फिरने तथा द्विइंद्रियादि प्राणियों पर पैर रखकर

चलने में मल, मूत्र, थूक, नाक-मल मिट्टी वगैरह डालने से एकेंद्रियादि पंचेन्द्रिय प्राणी अपने स्थान पर जाने से रोके गये हों, दूसरी जगह डाले गये हों, संघर्षित किये कराये गये हों, दूसरे पर डाले गये हों, तपाये गये हों, काटे गये हों, मूर्छित किये गये हों, छेदे गये हों, और अपने स्थान से जाते हुये पृथक २ किये गये हों, तो मैं उसका प्रायश्चित करता हूँ दोषों की शुद्धि के लिये भगवान अरहंत को नमस्कार करता हूं।

तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।
कायोत्सर्गं करोम्यहं ॥

(६ बार णमोकार मंत्र का जप करना चाहिये)

(इर्यापथ अलोचना)

इच्छामि भंत्ते ईरिया वह मालोचेउं पुव्वुत्तर दक्खिण पच्छिम चउ दिसासु विदिसासु विहरमाणेण जुगुत्तर दिट्ठिणा दट्ठव्वा डव डव चरियाये पमांददोसेण पाणभूद जीव सत्ताणं एदेसिं उवघादो कदो वा कारिदो वा किरितो वा समणुमणिदो वा तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

भावार्थः—हे भगवान ! मैं इर्यापथ की अलोचना करता हूं ।
पूर्वोत्तर दक्षिण पश्चिम चारों दिशा और ईशानादि विदिशाओं में इधर उधर फिरने और उपर की ओर दृष्टिकर चलने में मैंने प्रमादवश द्विन्द्रियादिक प्राणियों का घात किया हो कराया हो वा अनुमति दी हो वे पाप मिथ्या होवें ।

अथ दिग्वंदना

तीन आवर्त व एकशिरोनति प्रति दिशा में करना चाहिये)

[पूर्व को ओर मुख करके पढ़े]

प्राग्दिग्विदिगन्तरतः केवलि जिन सिद्ध साधु गणदेवाःये सर्वर्द्धिसमृद्धाःयोगीशास्तानहं वंदे ।।

भावार्थः—पूर्व दिशा विदिशा में अरहंत, सिद्ध साधु केवलि, कृत्याकृत्रिम, जिन चैत्य, चैत्यालय जहां जहां हों उनको मेरा मन से, वचन से, काय से वारम्वार नमस्कार होवे ।

(दक्षिण की ओर मुख करके पढ़ें)

दक्षिण दिग्विदिगन्तरतः केवलि जिन सिद्ध साधु गणदेवाःये सर्वर्द्धि समृद्धा योगीशास्तानहं वंदे ।।

भावार्थः—दक्षिण दिशा विदिशा में अरहंत, सिद्ध, साधु केवलि कृत्याकृत्रिम जिन चैत्य चैत्यालय जहां जहां हों उनको मेरा मन से, वचन से, काय से, बारम्बार नमस्कार होवे ।

(पश्चिम की ओर मुख करके पढ़ें)

पश्चिम दिग्विदिगन्तरतःकेवलि जिनसिद्ध साधु गणदेवाःये सर्वध्दि समृध्दाःयोगीशास्तानहंवंदे।।

भावार्थः—पश्चिम दिशा विदिशा में अरहंत, सिद्ध साधु केवलि कृत्याकृतिम जिन चैत्य चैत्यालय जहां जहां हों उनको मेरा मन से, वचन से, काय से बारम्बार नमस्कार होवे ।

(उत्तर की ओर मुख करके पढ़ें)

उत्तार दिग्विदिगंतरतः केवलि जिन सिध्द साधुगण देवाः ये सर्वध्दि समृध्दाः योगिशास्तानहं वंदे ।।

भावार्थः– उत्तर दिशा विदिशा में अरहंत, सिद्ध साधु, केवलि कृत्रिमाकृत्रिम जिन चैत्य चैत्यालय जहां जहां हो उनको मेरा मन से, वचन से, काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

(पश्चात् दण्डवत प्रणाम करके अपने आसन पर स्थिर चित्त से बैठ जाना चाहिये।)

(सामायिक करने की प्रतिज्ञा)

भगवन् नमोऽस्तुते ऐर्यापथिकोऽहमद्य अपरान्हिक-देववंदनां करिष्यामि (सामायिक स्वीकारः)

भावार्थः- हे भगवन् ! मैं आपको नमस्कार करता हुआ संध्याकालकी देव बंदना में सामायिक स्वीकार करता हूँ। अर्थात् सामायिक काल पर्यन्त किसी प्रकार का आरंभ नहीं करूंगा और नइस स्थान को छोड़कर स्थानान्तर गमन करूंगा, तथा जो मेरे शरीर पर परिग्रह है उससे निर्ममत्व होता

हुवा अन्य सब परिग्रहों कों छोड़ता हूँ ।

(सामायिक में चिन्तवन्)

श्लोक—

सिद्धं संपूर्ण भव्यार्थं सिध्देः कारण मुत्तमम् ।
प्रशस्त दर्शनं ज्ञानं चारित्रं प्रतिपादनम् ॥

भावार्थ—सम्पूर्ण भव्यों के लिये इष्ट सिद्धि के सर्वोत्तम कारण तथा सम्यक दर्शन ज्ञान चारित्र के प्रतिपादन करने वाले अनंतानंत सिद्धों को मेरा नमस्कार हो ।

श्लोक—

सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशु केशरम् ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितय मंगलम् ॥

भावार्थ—प्रणाम करते हुये इन्द्रों के मुकुटों पर जिस प्रभु के चरणों की प्रभा प्रकाश मान होरही है ऐसे तीनों लोकों के मंगल स्वरूप श्री वर्धमान स्वामी को नमस्कार हो ।

श्लोक—

सिद्ध वस्तु वचो भक्त्या सिद्धान् प्रणमतः सदा।
सिद्ध कार्याः शिवं प्राप्ताः सिद्धिंददतुनोऽव्ययाम्

भावार्थ—सिद्ध हो चुके हैं समस्त कार्य जिनके तथा परम सुखको प्राप्त हुए संपूर्णसिद्धोंको भक्तिवश हम प्रणाम करतेहैं वे सिद्ध प्रभु हमें अविनाशी मोक्ष सिद्धि प्रदान करें

श्लोक—

नमोऽस्तु धूत पापेभ्यः सिद्धेभ्यः ऋषि परिषदे।
सामायिकं प्रपद्येऽहं भवभ्रमण सूदनम् ।।

भावार्थ—मैं निर्दोष सिद्धों को तथा मुनि समुदाय को नमस्कार करताहूँ तथा संसारके परिभ्रमणको नाश करने वाली सामायिक को धारण करता हूँ।

श्लोक—

दव्वे खेत्ते काले भावेय कदा वराह्सो हणयम् ।
णिन्दणगरहण जुत्तो,मण,वच, कायेण पडिकमणम्।

अर्थ— द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव से मैंने कभी किसी को निन्दा, गर्हा की हो तो मैं मन, वचन, काय से उसका

प्रतिक्रमण (पश्चात्ताप) करता हूँ ।

श्लोक—

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्तिमे सव्व भूदेसु, वैरंमज्झं ण केणवि ।।

अर्थ—मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ सब जीव मुझ को क्षमा करें मेरा सब प्राणियों से मैत्री भाव है किसी से बैर भाव नहीं है ।

श्लोक—

समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना ।
आर्त रौद्र परित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम् ।।

अर्थ—सर्व प्राणियो में सम भाव रखना संयम पालन करना, पवित्र भाव रखना तथा आर्त, रौद्र परिणामों का छोड़ना ही सच्चा सामायिक व्रत है ।

श्लोक—

साम्य मे सर्व भूतेषु, वैरं मम न केनचित् ।
आशां सर्वां परित्यज्य, समाधिमहमाश्रये ।।

अर्थ—मैं सम्पूर्ण प्राणियों में समता रखता हूँ किसी

से बैर भाव नहीं है। मैं सर्व आशाओंको छोड़कर समाधि का आश्रय लेता हूँ।

श्लोक—

रागात् द्वेषात् ममत्वाद्वा, हा मयाये विराधिताः।
क्षमन्तु जन्तवस्ते मे, तेभ्यो क्षाम्याम्यहं पुनः॥

अर्थ—राग, द्वेष अथवा मोह से मैंने किसी जीव की विराधना की हो तो वे मुझ पर क्षमा करें मैं भी उनसे बार बार क्षमा चाहता हूँ।

श्लोक—

मनसा, वपुषा वाचा, कृत कारित सम्मतं।
रत्नत्रये भवाः दोषान् गर्हे निन्दामि वर्जये॥

अर्थ—मन, वचन, काया से अथावा कृत कारित, अनुमोदना, से मैंने अपने रत्नयत्र में जो दोष लगाये हों उनकी मैं निन्दा गर्हा करता हूँ और उनका परित्याग करता हूँ।

श्लोक—

तैरश्चं, मानवं, दैवमुपसर्गं सहेऽधुना।
काया-हार कषायादीन्, प्रत्याख्यामि त्रिशुद्धितः।

अर्थ—तिर्य्यंच, मनुष्य या देव कृत. उपसर्ग को मैं इस समय धैर्य पूर्वक सहन करूंगा—तथा शरीर आहार व कषायों को मन, बचन काय से छोड़ता हूँ।

श्लोक—

रागं द्वेषं भयं शोकं प्रहर्षौत्सुक्यदीनताम्।
व्युत्सृजामि त्रिधा सर्वमरतिं रतिमेव च॥

अर्थ—में राग, द्वेष भय, शोक, हर्ष, विषाद, दीनता तथा सब प्रकार की प्रीति और अप्रीति को मन वचन काय से छोड़ता हूँ।

श्लोक—

जीविते मरणे लाभेऽलाभे योगे विपर्यये।
वन्धावरौ सुखे दुःखे, सर्वदा समता मम॥

अर्थ—जीवन, मरण, लाभ – हानि, योग – वियोग, बन्धु—शत्रु, तथा सुख-दुःख में मेरे सदा समता भाव रहे।

श्लोक—

आत्मैव मे सदा ज्ञाने दर्शने चरणे तथा।
प्रत्याख्याने ममात्मैव, तथा संवरयोगयोः॥

अर्थ—सम्यग दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा प्रत्याख्यान संवर और योग मम आत्म स्वरूप हैं अर्थात् आत्मासे ये कोई भिन्न पदार्थ नहीं हैं।

श्लोक—

एको मे शाश्वतश्चात्मा, ज्ञान, दर्शन लक्षणः।
शेषा वहिर्भवाः भावाः सर्वे संयोग लक्षणः॥

अर्थ—मैं एक शाश्वत त्रिकाल स्थायी चैतन्य आत्मा हूं ज्ञान, दर्शन ही मेरा सत्य लक्षण है। शेष रागादि भाव बाह्य पदार्थोंके संयोगसे पैदा होतेहैं इसलिये मुझसे सर्वथा भिन्न हैं।

श्लोक—

संयोगमूला जीवेन, प्राप्ता दुःख परम्परा।
तस्मात् संयोगसम्बन्धं त्रिधा सर्वं त्यजाम्यहं॥

अर्थ—संयोग जन्य रागादिक भावों से ही मैंने अनादि परम्परा से अनन्त दुःख भोगे हैं इसलिये अब मैं इन संयोगिक भावों को मन, वचन, काय से छोड़ता हूं।

श्लोक—

एवं सामायिकात् सम्यक्, सामायिकमखंडितम्।
वर्ततां मुक्ति मानिन्या, वशी चूर्णायितं मम ॥

अर्थ—इस प्रकार समतापूर्वक की गई अखंड सामायिक मुक्ति (रमा) को वश करने के लिये मोहनी चूर्ण है।

श्लोक—

भगवन् नमोऽस्तु प्रसीदतु प्रभु पादान्।
वंदिष्येऽहमिति एषोऽहं सर्वसावद्ययोग
विरतोऽस्मि ॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं आपके चरणों की वंदना करता हुआ नमस्कार करता हू और सब पाप कर्मो से विरक्त होता हूँ
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। चत्तारि मंगलं, अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णतो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारिसरणं, पव्वज्जामि, अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि। केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। ॐ नमोऽर्हते झौं झौं स्वाहा—

(अरहंत भक्ति पूर्वक सामायिक की दृढ़ प्रतिज्ञा)

अड्ढाइज्जदीवेसुदीवेसुदो समुदेसुपंण्णारसकम्मभूमिसु अरहंताणं भयवंताणं अदीदरायाणं तित्थयराणं धम्माइरियाणं धम्मदेसयाणं धम्मणायगाणं धम्मवरचाउरगं चक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं सदाकरेमि किरियम्मि करेमिभंते सामायियं सव्व सावज्जोगं पच्चक्खामि जावन्नियमं तिविहेण मणसा वच्चियाकायेण णकरेमि णकारयेमि अंणंकरं तमपि ण समणुमण्णमि। तस्स भत्ति। अइच्चारं पडिक्कमामि। णिंदामि अण्णाणं गर्हामि अप्पाणं

जावदरहंताणं भयवन्ताणं पज्जुवासं करेमि तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि

भावार्थ–ढाई द्वीप, दो समुद्र, पन्द्रह कर्म भूमियों मेंजो अर्हंतआदितीर्थंकर धर्माचार्य धर्मोपदेशकधर्मनायक धर्मचक्रवर्ती, देवाधिदेवऔर ज्ञानीहैं, उनकोमें वंदनादिक क्रिया करताहूँ; औरहे भगवान्! सामायिकस्वीकार करता हूं। तथा सर्द पापों का त्याग कर इन पापों को सामायिक समय पर्यन्त मन वचन कायसे नकरूंगा नकराउंगा और न करते हुये की अनुमोदना करूंगा। मैं अतिचारों का त्याग,अज्ञानकी निंदाव अपनीदूषित आत्माका तिरस्कार करताहूँ मैंअरहंतभगवानकी उपासनाकरूंगा तबतक पाप कर्म और दुष्ट आचरणों का त्याग करता हूँ।

अर्थ –

अपरान्हिक देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल कर्म क्षयार्थं सामायिक समेतं कायोत्सर्गं करोम्यहम्

(९ बार णमोकार मन्त्र का जाप करें)

भावना द्वात्रिंशतिका

(सामायिक पाठ)

पद्यानुवाद

(भावना बत्तीसी)

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणी जनों में हर्ष प्रभो।
करुणा-स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो ॥१॥

यह अनन्त बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ॥२॥

सुख-दुख वैरी बन्धु वर्ग में, कांच-कनक में समता हो।
वन-उपवन प्रासाद कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो ॥३॥

जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु! मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ॥४॥

एकेंद्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो ॥५॥

मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्त्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से ॥६॥

चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्योंप्रभु!मैं भी आदि उपांत।
अपनी निन्दा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त ॥७॥

सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत-प्रवर्त्तन करके, शीलाचरण विलीन किया ॥८॥

कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी पीकर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया ॥९॥

मैंने छली और मायावी, हो असत्य-आचरण किया।
पर-निन्दा गाली चुगली जो, मुंह पर आया वमन किया ॥१०॥

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे ।
निर्मल-जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे ॥११॥

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे ।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे ॥१२॥

दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये ।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे ॥१३॥

जो भव-दुःख का विध्वंसक है, विश्व-विलोकी जिसका ज्ञान ।
योगी-जन के ध्यानगम्य वह, बसे हृदय में देव महान ॥१४॥

मुक्ति-मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म मरण से परम अतीत ।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप ॥१५॥

निखिल विश्व के वशीकरण वे, राग रहे ना द्वेष रहे ।
शुद्ध अतींद्रिय ज्ञानस्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे ॥१६॥

देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्म-कलंक-विहीन विचित्र ।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र ॥१७॥

कर्म-कलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्य प्रकाश ।
मोह तिमिर को भेद चला जो, परमशरण मुझको वह आप्त ।१८।

जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश ।
स्वय ज्ञानमय स्वपर-प्रकाशी, परमशरण मुझको वह आप्त ॥१९॥

जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ ।
आदिअंत से रहित शांत शिव, परम शरण मुझको वह आप्त ॥२०॥

जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव ।
भय-विषाद चिन्ता सब जिसके, परम शरण मुझको वह देव ॥२१॥

तृण चौकी शिल शैल शिखर नहिं, आत्म-समाधि के आसन।
संस्तर पूजा संग सम्मिलन, नहीं समाधी के साधन ।।२२।।

इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, विश्व मानता है मातम।
हेय सभी है विश्व-वासना, उपादेय निर्मल आतम ।।२३।।

बाह्य जगत कुछ भी नहिं मेरा,और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें ।।२४।।

अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृगतृष्णा है झूँठे हैं उसके पुरुषार्थ ।।२५।।

अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञानस्वभावी है।
जो कुछ बाहर है सब पर है, कर्माधीन विनाशी है ।।२६।।

तन से जिसका ऐक्य नहीं, सुत तिय मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम-समूह रहें कैसे ।।२७।।

महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़-देह सयोग।
मोक्ष-महल का पथ है सीधा, जड़ चेतन का पूर्ण वियोग ।।२८।।

जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प निर्द्वन्द्व आत्मा, फिर फिर लीन उसी में हो ।।२९।।

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते ।।३०।।

अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी बुद्धि।।३१।।

निर्मल सत्य शिवं सुन्दर है, 'अमितगति' वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण ।।३२।।

परमानन्द स्तोत्र

(भाषानुवाद)

परमानंद संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम् ॥१॥

अनंतसुखसंपन्नं ज्ञानामृतपयोधरम् ।
अनंतवीर्यसंपन्नं, दर्शनं परमात्मनः ॥२॥

निर्विकारं निराबाधं सर्वसंगविवर्जितम् ।
परमानंदसम्पन्नं, शुद्धचैतन्यलक्षणम् ॥३॥

उत्तमा स्वात्मचिंता स्यान्मोहचिंता च मध्यमा ।
अधमा कामचिंता स्यात्, परचिंताऽधमाधमा ॥४॥

निर्विकल्प समुत्पन्नं ज्ञानमेव सुधारसम् ।
विवेकमंजुलिं कृत्वा, तत्पिबंति तपस्विनः ॥५॥

सदानन्दमयं जीवं यो जानाति स पण्डितः ।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम् ॥६॥

नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा ।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः ॥७॥

द्रव्यकर्ममलैर्मुक्तं भावकर्मविवर्जितम् ।
नोकर्मरहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः ॥८॥

आनन्दं ब्रह्मणोरूपं निज देहे व्यवस्थितम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम् ॥९॥

तद्ध्यानं क्रियते भव्यैर्मनो येन विलीयते ।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं चिच्चमत्कारलक्षणम् ॥१०॥

ये ध्यानशीला मुनयःप्रधानास्ते दुखहीना नियमाद्भवन्ति ।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वम्, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेमेव ॥११॥

परमानन्दयुक्त विकाररहित, रोगों से मुक्त और (निश्चयनय से) अपने शरीर में ही विराजमान परमात्मा को ध्यानहीन पुरुष नहीं देखते हैं ।।१।।

अनन्त सुख से परिपूर्ण, ज्ञानरूपी अमृत से भरे हुए समुद्र के समान और अनन्त बल युक्त परमात्मा के स्वरूप का ही अवलोकन करना चाहिये ।।२।।

विकारों से रहित, बाधाओं से मुक्त, सम्पूर्ण परिग्रहों से शून्य और परमानन्द विशिष्ट शुद्ध (केवलज्ञानरूप) चैतन्य ही (परमात्मा का) लक्षण जानना चाहिये ।।३।।

अपनी आत्मा की (उद्धार की) चिन्ता करना उत्तम चिन्ता है, शुभरागवश (दूसरे जीवों का भला करने को) चिन्ता करना मध्यम चिन्ता है, काम-भोग की चिन्ता करना अधम चिन्ता है और दूसरों का (अहित करने का) विचार करना अधम से भी अधम चिन्ता है ।।४।।

संकल्प-विकल्पों को नाश करने से समुत्पन्न जो ज्ञानरूपी सुधारस उसको तपस्वी महात्मा ज्ञानरूपी अंजुलि से पीते हैं ।।५।।

जो पुरुष सदा ही परमानन्दविशिष्ट आत्मा को जानता है, वही (वास्तव में) पण्डित है और वही पुरुष परमानन्द के कारणभूत अपनी आत्मा की सेवा करता है ।।६।।

जैसे कमलपत्र के ऊपर पानी की बूंद कमल से सदा ही भिन्न रहती है, उसी प्रकार यह निर्मल आत्मा शरीर के भीतर रहकर भी स्वभाव की अपेक्षा शरीर से सदा भिन्न ही रहता है। अथवा कार्माण शरीर के भीतर रहकर भी शरीरजन्य रागादि मलों से सदा अलिप्त रहता है ।।७।।

इस चैतन्य आत्मा का स्वरूप निश्चय से ज्ञानावरणादि रूप द्रव्य कर्मों से रहित, रागद्वेषादि भावकर्मों से शून्य और औदारिकादि शरीररूप नोकर्मों से पृथक जानो ।।८।।

जैसे जन्मांध पुरुष सूर्य को नहीं जानता है, वैसे ही शरीर के भीतर स्थित परमात्मा के आनन्दमय स्वरूप को ध्यानहीन पुरुष नहीं जान पाते हैं ।।९।।

जिस ध्यान के द्वारा यह चंचल मन स्थिर होकर परमानन्दस्वरूप में विलीन (मग्न) हो जाता है, वही ध्यान (मोक्ष के इच्छुक) भव्य जीव करते हैं तथा उसी समय चैतन्य चमत्कारमात्र शुद्ध परमात्मा का साक्षात् दर्शन होता है ।।१०।।

उत्तम ध्यान करनेवाले जो मुनि हैं, वे नियम से सभी दुःखों से छूट जाते हैं तथा शीघ्र ही परमात्मपद को प्राप्त करके (और बाद में अयोग केवली होकर) क्षण मात्र में ही मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं ।।११।।

आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्तसंकल्पविकल्पमुक्तं ।
स्वभावलीना निवसंति नित्यं,जानाति योगी स्वयमेवतत्त्वम् ।।१२।।

(परमात्मा का स्वरूप)

चिदानन्दमयं शुद्धं निराकारं निरामयं ।
अनन्तसुखसम्पन्नं सर्वसंगविवर्जितम् ।।१३।।

लोकमात्रप्रमाणोऽयं निश्चये न हि संशयः ।
व्यवहारे तनूमात्रः कथितः परमेश्वरैः ।।१४।।

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं तत्क्षणंगतविभ्रमः ।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा, निर्विकल्पसमाधिना ।।१५।।

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुङ्गवः ।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः ।।१६।।

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः ।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मनः ।।१७।।

स एव सर्वं कल्याणं, स एव सुखभाजनं ।
स एव शुद्ध चिद्रूपं, स एव परमः शिवः ।।१८।।

स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः ।
स एव परमचैतन्यं, स एव गुणसागरः ।।१९।।

परमाल्हादसम्पन्नं, रागद्वेषविवर्जितम् ।
अर्हन्तं देहमध्ये तु, यो जानाति स पण्डितः ।।२०।।
आकाररहितं शुद्धं, स्वस्वरूपव्यवस्थितम् ।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम् ।।२१।।
सत्सदृशं निजात्मानं, प्रकाशाय महीयसे ।
सहजानन्दचैतन्यं, यो जानाति स पण्डितः ।।२२।।

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम् ।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः ।।२३।।

काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्तिरूपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति स पण्डितः ।।२४।।

निज स्वभाव में लीन हुए मुनि ही समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित परमानन्दमय परमात्मा के स्वरूप में निरन्तर तन्मय रहते हैं और इस प्रकार के योगी महात्मा ही परमात्मस्वरूप को स्वयं जानते हैं।।१२।।

श्री सर्वज्ञदेव ने परमात्मा का स्वरूप चिदानन्दमय, शुद्ध, रूपरसादि आकार से रहित, अनेक प्रकार के रोगों से सर्वथा शून्य, अनन्त सुख विशिष्ट व सर्व परिग्रह रहित बताया है। निश्चयनय से आत्मा का आकार लोकाकाश के समान असंख्यातप्रदेशी तथा व्यवहारनय से प्राप्त छोटे व बड़े शरीर के समान बताया है ।।१३-१४।।

इसप्रकार ऊपर कहे हुए परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को योगीपुरुष जिस समय निर्विकल्प समाधि के द्वारा जान लेता है, उसी समय उस योगी का चित्त आकुलतारहित स्थिर होता है और अज्ञान का नाश हो जाता है।।१५।।

वह परमध्यानी योगी मुनि ही परमब्रह्म कर्मों को जीतने से जिन, शुद्धरूप हो जाने से परम आत्मतत्त्व, जगतमात्र के हित का उपदेशक हो जाने से परमगुरु, समस्त पदार्थों के प्रकाश करनेवाले ज्ञान से युक्त हो जाने से परमज्योति, ध्यान ध्याता के अभेदरूप हो जाने से शुक्लध्यानरूप परमध्यान, व परम तत्त्वरूप परमात्मा के यथार्थ स्वरूपमय हो जाता है। वही परमध्यानी मुनि हो सर्व प्रकार के कल्याणों से युक्त, परमसुख का पात्र, शुद्ध चिद्रूप परम शिव कहलाता है और वही परमानन्दमय, सर्वसुखदायक, परम चैतन्य आदि अनन्त गुणों का समुद्र हो जाता है ।।१६-१९।।

परम आल्हादयुक्त, रागद्वेषरहित अरहंतदेव को जो ज्ञानी पुरुष अपने देहरूपी मन्दिर में विराजमान देखता व जानता है, वस्तुतः वही पुरुष पण्डित है ।।२०।।

आकाररहित, शुद्ध, निजस्वरूप में विराजमान, विकाररहित, कर्ममल से शून्य और क्षायिक सम्यग्दर्शनादि अष्टगुणों से सहित सिद्ध परमेष्ठियों के स्वरूप का चिन्तवन करे ।।२१।।

सिद्ध परमेष्ठी के समान परमज्योतिस्वरूप केवलज्ञानादि गुणों की प्राप्ति के लिए जो पुरुष अपनी आत्मा को परमानन्दमय, चैतन्यचमत्कार-युक्त जानता है, वही वास्तव में पण्डित है ।।२२।।

जिस प्रकार सुवर्ण-पाषाण में सोना, दूध में घी और तिलों में तेल रहता है उसीप्रकार शरीर में शिवस्वरूप आत्मा विराजमान है। जैसे काष्ठ के भीतर आग शक्तिरूप से रहती है उसीप्रकार शरीर के भीतर यह शुद्ध आत्मा विराजमान है। इसप्रकार जो समझता है,वही वास्तव में पण्डित है ।।२३-२४।।

आत्मस्वरूप की प्राप्ति का उपाय

सद्दृष्टिज्ञानचारित्रमुपाय: स्वात्मलब्धये ।
तत्त्वे याथात्म्यसंस्थित्यमात्मनो दर्शनं मतं ॥११॥

यथावद्वस्तुनिर्णीति: सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत् ।
तत्स्वार्थव्यवसायात्मकथञ्चित्प्रमिते: पृथक् ॥१२॥

दर्शनज्ञानपर्यायेषूत्तरोत्तरभाविषु ।
स्थिरमालम्बनं यद्वा माध्यस्थ्यं सुखदु:खयो: ॥१३॥

ज्ञाता दृष्टाऽहमेकोऽहं सुखे दु:खे न चापर: ।
इतीदं भावनादाढ्यं, चारित्रमथवा परम् ॥१४॥

तदेतन्मूलहेतो: स्यात्कारणं सहकारकम् ।
यद्बाह्यं देशकालादि तपश्च बहिरंगकम् ॥१५॥

इतीदं सर्वमालोच्य, सौस्थ्ये दौ:स्थ्ये च शक्तित: ।
आत्मानं भावयेन्नित्यं, रागद्वेषविवर्जितम् ॥१६॥

कषायै रञ्जितं चेतस्तत्त्वं नैवावगाहते ।
नीलीरक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो हि कौकुम: ॥१७॥

ततस्त्वं दोषनिर्मुक्त्यै निर्मोहो भव सर्वत: ।
उदासीनत्वमाश्रित्य तत्त्वचिंतापरो भव ॥१८॥

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों अपने शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति अर्थात् ससार से मुक्त होने के कारण हैं। आत्मा के वास्तविक स्वरूप या सात तत्त्वों के सच्चे श्रद्धान को तो सम्यग्दर्शन कहते हैं। पदार्थों के वास्तविकपनेसे निर्णय करने को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। यह सम्यग्ज्ञान दीपक की तरह अपना तथा अन्य पदार्थों का प्रकाशक होता है। अज्ञान निवृत्ति रूप जो फल है उससे कथंचित् भिन्न भी है। जो अपनी ही क्रम-क्रम से होने वाली ज्ञानदर्शनादिक पर्यायों में स्थिररूप आलम्बन है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं। अथवा सांसारिक सुख-दुःखों में मध्यस्थ भाव रखने को सम्यक्चारित्र कहते हैं। या मैं ज्ञाता हूँ, दृष्टा हूँ, अपने कर्तव्य के फलस्वरूप सुख-दुःखों का भोगने वाला स्वयं अकेला ही हूँ, बाह्य स्त्री पुत्रादि पदार्थों का मेरे से कोई सम्बन्ध नहीं है – इत्यादि अनेक प्रकार की शुद्ध आत्मस्वरूप में तल्लीन करानेवाली भावनाओं की दृढ़ता को भी सम्यक्चारित्र कहते है ॥११-१४॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र को जो ऊपर के श्लोकों में मोक्षप्राप्ति का मूल कारण बताया है। उनके सहकारीकारण देशकालादिक को व अनशन अवमौदर्य आदि बाह्य तप को समझना चाहिए ॥१५॥

इस प्रकार तर्क वितर्क के साथ आत्मस्वरूप को अच्छी तरह जानकर सुख में व दुःख में यथाशक्ति आत्मा को नित्य ही रागद्वेष रहित चिन्तवन करना चाहिये। अर्थात् सुख सामग्री के मिलने पर राग नहीं करना चाहिये और अनिष्ट समागम में द्वेष नहीं करना चाहिये, क्योंकि ये सब इष्ट अनिष्ट पदार्थ आत्मा को कुछ भी हानि नहीं कर सकते। इनका संबंध केवल शरीर से रहता है, ऐसा विचार रखना चाहिये ॥१६॥

जैसे नीले कपड़े पर केशर का रंग नहीं चढ़ सकता, वैसे ही क्रोधादि कषायों से रंजायमान हुए मनुष्य का चित्त, वस्तु के असली स्वरूप को नहीं पहचान सकता ॥१७॥

आचार्य व्यवहारी जीव से कहते हैं कि हे भाई! जब राग-द्वेष के दूर किये बिना आत्महित नहीं हो सकता, तब तुमको रागद्वेष दूर करने के लिए शरीरादिक परपदार्थों का मोह त्याग कर और संसार, शरीर व भोगों से उदासीन भाव धारण करके तत्त्वविचार में तन्मय रहना चाहिये ॥१८॥

हेयोपादेयतत्त्वस्य, स्थितिं विज्ञाय हेयतः ।
निरालम्बो भवान्यस्मादुपेये सावलम्बनः ॥१९॥

स्व-परं चेति वस्तुत्वं, वस्तुरूपेण भावय ।
उपेक्षाभावनोत्कर्षपर्यन्ते, शिवमाप्नुहि ॥२०॥

मोक्षेऽपि यस्यनाकांक्षा, स मोक्षमधिगच्छति ।
इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी, कांक्षां न क्वापि योजयेत् ॥२१॥

साऽपि च स्वात्मनिष्ठत्वात्सुलभा यदि चिन्त्यते ।
आत्माधीने सुखे तात, यत्नं किं न करिष्यति ॥२२॥

स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोहं छिन्धि किन्त्विमम् ।
अनाकुलस्वसंवेद्ये, स्वरूपे तिष्ठ केवले ॥२३॥

स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरम् ।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत्स्वोत्थमानंदममृतं पदम् ॥२४॥

इति स्वतत्त्वं परिभाव्य वाङ्मयम्,
य एतदाख्याति शृणोति चादरात् ।
करोति तस्मै परमार्थसम्पदम्,
स्वरूपसंबोधनपंचविंशतिः ॥२५॥

हेय (त्यागने योग्य) व उपादेय (ग्रहण करने योग्य) तत्त्वका स्वरूप जानकर पररूप जो हेयतत्व, उससे निरालंबी होकर उपादेयस्वरूप का आलंबन करना चाहिये ।।१९।।

अपनी आत्मा के व पर पदार्थों के असली स्वरूप का बार-बार चिन्तवन करना चाहिये और समस्त संसारी पदार्थों की इच्छा का त्याग करके उपेक्षा भावना (रागद्वेष के त्याग की भावना) को बढ़ाते-बढ़ाते मोक्षपद प्राप्त करना चाहिये ।।२०।।

जब किसी साधु महात्मा पुरुष के हृदय से मोक्ष की भी इच्छा निकल जाती है तभी उसको मुक्ति होती है। इस सिद्धान्त वाक्य के ऊपर ध्यान देते हुए आत्महित के इच्छुक जीवों को सभी पदार्थों की इच्छा का त्याग करना चाहिये ।।२१।।

यदि कोई यह कहे कि इच्छा करना तो अपने आधीन होने से सुलभ है, किन्तु फल प्राप्ति अपने आधीन न होने से कठिन है, इसलिये इच्छा किसी भी वस्तु की की जा सकती है। ऐसा कहने वाले को आचार्य करुणापूर्वक कहते हैं कि हे भाई ! जैसे इच्छा करना आत्माधीन होने से सुलभ है, वैसे ही परमानन्दमय सुख का पाना भी तो आत्मा के ही आधीन है। इसलिए तुम उसकी प्राप्ति का प्रयत्न ही क्यों नहीं करते, जिससे कि संसार के झगड़ों से छूटकर हमेशा के लिए निराकुलित हो जाओ ।।२२।।

आचार्य कहते हैं कि मुक्ति प्राप्त करना भी अपने ही आधीन समझ कर स्व और पर को जानना चाहिये तथा बाह्य पदार्थों के मोह को नष्ट करना चाहिये और आकुलतारहित स्वानुभवगम्य केवल अपने निजस्वरूप में ही स्थिर होना चाहिये ।।२३।।

इस श्लोक में आचार्य आत्मा में ही सातों कारक सिद्ध करते हुए कहते हैं कि व्यवहारी जीवों को अपनी ही आत्मा में उत्पन्न हुए परमानन्द-मय अविनश्वर पद को प्राप्त करना चाहिये ।।२४।।

श्री अकलङ्क भट्टाचार्य उपसंहार करते हुए ग्रन्थ का माहात्म्य वर्णन करते हैं कि जो पुरुष पच्चीस श्लोकों में कहे हुए इस स्वरूप सम्बोधन ग्रन्थ को आदर से पढ़ेंगे, सुनेंगे और इसके वाक्यों द्वारा कहे हुए आत्मतत्त्व का बारंबार मनन करेंगे उनको यह ग्रन्थ परमार्थ की सम्पत्ति अर्थात मोक्षपद प्राप्त करेगा ।।२५।।

आराधना पाठ

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं ।
मैं सूर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं ।।
मैं धर्म करुणामय जु चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना ।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना ।।१।।

चौवीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं ।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदिते पातक नसैं ।।
गिरनार शिखर सम्मेद चाहूँ, चम्पापुरी पावापुरी ।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्रम जुरी ।।२।।

नव तत्व का सरधान चाहूँ, और तत्व न मन धरौं ।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासौं भय हरों ।।
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव नहीं कदा ।
तिहूँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागे कदा ।।३।।

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित्र, सदा चाहूँ भाव सों ।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हर्ष उछाव सों ।।
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सों ।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों ।।४।।

मैं वेद चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों ।
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाह सों ।।
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ ।
आराधना मैं चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ ।।५।।

भावना-बारह जु भाऊं, भाव निरमल होत हैं ।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं ।।
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना ।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूं, शिव लहूँ जहँ मोह ना ।।६।।

मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनहीं सों करौं।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, आरम्भ में सब परिहरौं॥
इस दुखद पंचम काल माहीं, कुल श्रावक में लह्यौ।
अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यौ॥७॥

आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी॥
वसुकर्मनाश विकाश, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिये।
करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये॥८॥

स्वस्ति मंगल

ऋषभदेव कल्याण कराय, अजित जिनेश्वर निर्मल थाय।
स्वस्ति करें संभव जिनराय, अभिनंदन के पूजों पाय॥१॥
स्वस्ति करें श्री सुमति जिनेश, पद्म-प्रभ पद-पद्म विशेष।
श्री सुपार्श्व स्वस्ति के हेतु, चन्द्रप्रभ जन तारन सेतु॥२॥
पुष्पदंत कल्याण सहाय, शीतल शीतलता प्रकटाय।
श्री श्रेयांस स्वस्ति के श्वेत, वासुपूज्य शिव साधन हेत॥३॥
विमलनाथ पद विमल कराय, श्री अनंत आनंद बताय।
कुंथु और अरजिन सुखरास, शिवमग में मंगलमय आश॥४॥
मल्लि और मुनिसुव्रत देव, सकल कर्मक्षय कारण एव।
श्री नमि और नेमि जिनराज, करें सुमंगल मय सब काज॥५॥
पार्श्वनाथ तेवीसम ईश, महावीर वंदों जगदीश।
ये सब चौबीसों महाराज, करें भव्य जन मंगल काज॥६॥

हे भगवन-सामायिक के करने
में मन, वचन, काय की चंचलता से अति-चारादि दोष लगे हों
आपको भक्तिसे मिथ्या होवें संपूर्ण सामायिक-दोषों के निराकरण
के लिये मैं बृहत कायोत्सर्ग धारण करता हूँ।
(२७ बार णमोकार मन्त्र का जाप)
-: इति सामायिक पाठ समाप्तम् :-

बारह भावना

डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

अनित्य भावना

भोर की स्वर्णिम छटा सम क्षणिक सब संयोग हैं।
पद्मपत्रों पर पड़े जलबिन्दु सम सब भोग हैं॥
सान्ध्य दिनकर लालिमा सम लालिमा है भाल की।
सब पर पड़ी मनहूस छाया विकट काल कराल की॥१॥

अञ्जुलि-जल सम जवानी क्षीण होती जा रही।
प्रत्येक पल जर्जर जरा नजदीक आती जा रही॥
काल की काली घटा प्रत्येक क्षण मँडरा रही।
किन्तु पल-पल विषय-तृष्णा तरुण होती जा रही॥२॥

दुःखमयी पर्याय क्षणभंगुर सदा कैसे रहे?
अमर है ध्रुव आतमा वह मृत्यु को कैसे वरे?
ध्रुवधाम से जो विमुख वह पर्याय ही संसार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥३॥

संयोग क्षणभंगुर सभी पर आतमा ध्रुवधाम है।
पर्याय लयधर्मा परन्तु द्रव्य शाश्वत धाम है॥
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥४॥

अशरण भावना

छिद्रमय हो नाव डगमग चल रही मझधार में।
दुर्भाग्य से जो पड़ गई दुर्दैव के अधिकार में॥
तब शरण होगा कौन जब नाविक डूबा दे धार में।
संयोग सब अशरण शरण कोई नहीं संसार में॥५॥

जिन्दगी इक पल कभी कोई बढ़ा नहीं पायगा।
रस रसायन सुत सुभट कोई बचा नहीं पायगा॥
सत्यार्थ है बस बात यह कुछ भी कहो व्यवहार में।
जीवन-मरण अशरण शरण कोई नहीं संसार में॥६॥

निज आतमा निश्चय-शरण व्यवहार से परमातमा।
जो खोजता पर की शरण वह आतमा बहिरातमा॥
ध्रुवधाम से जो विमुख वह पर्याय ही संसार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥७॥

संयोग हैं अशरण सभी निज आतमा ध्रुवधाम है।
पर्याय व्ययधर्मा परन्तु द्रव्य शाश्वत धाम है॥
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की अराधना आराधना का सार है॥८॥

संसार भावना

दुःखमय निरर्थक मलिन जो सम्पूर्णतः निस्सार है।
जगजालमम गति चार में संसरण ही संसार है॥
भ्रमरोगवश भव-भव भ्रमण संसार का आधार है।
संयोगजा चिद्वृतियां ही वस्तुतः संसार है॥९॥

संयोग हों अनुकूल फिर भी सुख नहीं संसार में।
संयोग को संसार मे सुख कहें बस व्यवहार में॥
दुःख-द्वन्द हैं चिद्वृत्तियाँ संयोग ही जगफन्द है।
निज आतमा बस एक ही आनन्द का रसकन्द है॥१०॥

मन्थन करे दिन-रात जल घृत हाथ में आवे नहीं।
रज-रेत पेले रात-दिन पर तेल ज्यों पावे नहीं॥
सद्भाग्य बिन ज्यों संपदा मिलती नहीं व्यापार में।
निज आतमा के भान बिन त्यों सुख नहीं संसार में॥११॥

संसार है पर्याय में निज आतमा ध्रुवधाम है।
संसार संकटमय परन्तु आतमा सुखधाम है॥
सुखधाम से जो विमुख वह पर्याय ही संसार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥१२॥

एकत्व भावना

आनन्द का रसकन्द सागर शान्ति का निज आतमा।
सब द्रव्य जड़ पर ज्ञान का घनपिण्ड केवल आतमा॥
जीवन-मरण सुख-दुःख सभी भोगे अकेला आतमा।
शिव-स्वर्ग नर्क-निगोद में जावे अकेला आतमा॥१३॥

इस सत्य से अनभिज्ञ ही रहते सदा बहिरातमा।
पहिचानते निजतत्त्व जो वे ही विवेकी आतमा॥
निज आतमा को जानकर निज में जमे जो आतमा।
वे भव्यजन बन जायेंगे पर्याय में परमातमा॥१४॥

सत्यार्थ है बस बात यह कुछ भी कहो व्यवहार में।
संयोग हैं सर्वत्र पर साथी नहीं संसार में॥
संयोग की आराधना संसार का आधार है।
एकत्व की आराधना अराधना का सार है॥१५॥

एकत्व ही शिव सत्य है सौन्दर्य है एकत्व में।
स्वाधीनता सुख शान्ति का आवास है एकत्व में॥
एकत्व को पहिचानना ही भावना का सार है।
एकत्व की आराधना आराधना का सार है॥१६॥

अन्यत्व भावना

जिस देह में आतम रहे वह देह भी जब भिन्न है।
तब क्या करें उनकी कथा जो क्षेत्र से भी अन्य हैं॥
हैं भिन्न परिजन भिन्न पुरजन भिन्न ही धन-धाम हैं।
हैं भिन्न भगिनी भिन्न जननी भिन्न ही प्रिय वाम है॥१७॥

अनुज-अग्रज सुत-सुता प्रिय सुहृद जन सब भिन्न हैं।
ये शुभ अशुभ संयोगजा चिद्वृत्तियाँ भी अन्य हैं॥
स्वोन्मुख चिद्वृत्तियाँ भी आतमा से अन्य हैं।
चैतन्यमय ध्रुव आतमा गुणभेद से भी भिन्न हैं॥१८॥

गुणभेद से भी भिन्न हैं आनन्द का रसकन्द है।
है संग्रहालय शक्तियों का ज्ञान का घनपिण्ड है॥
वह साध्य है आराध्य है आराधना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना का एक ही आधार है॥१९॥

जो जानते इस सत्य को वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है॥
अन्यत्व को पहिचानना ही भावना का सार है।
एकत्व की आराधना आराधना का सार है॥२०॥

अशुचि भावना

जिस देह को निज जानकर नित रम रहा जिस देह में ।
जिस देह को निज मानकर रच-पच रहा जिस देह में ।।
जिस देह में अनुराग है एकत्व है जिस देह में ।
क्षण एक भी सोचा कभी क्या-क्या भरा उस देह में ।।२१।।
क्या-क्या भरा उस देह में अनुराग है जिस देह में ।
उस देह का क्या रूप है आतमा रहे जिस देह में ।।
मलिन मल पल रुधिर कीकस वसा का आवास है ।
जड़रूप है तन किन्तु इसमें चेतना का वास है ।।२२।।
चेतना का वास है दुर्गन्धमय इस देह में ।
शुद्धातमा का वास है इस मलिन कारागेह में ।।
इस देह के संयोग में जो वस्तु पलभर आयगी ।
वह भी मलिन मल-मूत्रमय दुर्गन्धमय हो जायगी ।।२३।।
किन्तु रह इस देह में निर्मल रहा जो आतमा ।
वह ज्ञेय है श्रद्धेय है बस ध्येय भी वह आतमा ।।
उस आतमा की साधना ही भावना का सार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ।।२४।।

आस्रव भावना

संयोगजा चिद्वृत्तियाँ भ्रमकूप आस्रवरूप हैं ।
दुःखरूप हैं दुःखकरण हैं अशरण मलिन जड़रूप हैं ।।
संयोग विरहित आतमा पावन शरण चिद्रूप है ।
भ्रमरोगहर सन्तोषकर सुखकरण है सुखरूप है ।।२५।।

इस भेद से अनभिज्ञता मद मोह मदिरा पान है।
इस भेद को पहिचानना ही आतमा का भान है।।
इस भेद की अनभिज्ञता संसार का आधार है।
इस भेद की नित भावना ही भवजलधि का पार है।।२६।।

इस भेद से अनभिज्ञ ही रहते सदा बहिरातमा।
जो जानते इस भेद को वे ही विवेकी आतमा।।
यह जानकर पहिचानकर निज में जमे जो आतमा।
वे भव्यजन बन जायेंगे पर्याय में परमात्मा।।२७।।

हैं हेय आस्रवभाव सब श्रद्धेय निज शुद्धातमा।
प्रिय ध्येय निश्चय ज्ञेय केवल श्रेय निज शुद्धातमा।।
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है।।२८।।

संवर भावना

देहदेवल में रहे पर देह से जो भिन्न है।
है राग जिसमें किन्तु जो उस राग से भी अन्य है।।
गुणभेद से भी भिन्न है पर्याय से भी पार है।
जो साधकों की साधना का एक ही आधार है।।२९।।

मैं हूँ वही शुद्धातमा चैतन्य का मार्तण्ड हूँ।
आनन्द का रसकन्द हूँ मैं ज्ञान का घनपिण्ड हूँ।।
मैं ध्येय हूँ श्रद्धेय हूँ मैं ज्ञेय हूँ मैं ज्ञान हूँ।
बस एक ज्ञायकभाव हूँ मैं मैं स्वयं भगवान हूँ।।३०।।

यह जानना पहिचानना ही ज्ञान है श्रद्धान है।
केवल स्वयं की साधना आराधना ही ध्यान है॥
यह ज्ञान यह श्रद्धान बस यह साधना आराधना।
बस यही संवरतत्त्व है बस यही सवरभावना ॥३१॥

इस सत्य को पहिचानते वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है॥
शुद्धातमा को जानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥३२॥

निर्जरा भावना

शुद्धातमा की रुची संवर साधना है निर्जरा।
ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना है निर्जरा॥
निर्मम दशा है निर्जरा निर्मल दशा है निर्जरा।
निज आतमा की ओर बढ़ती भावना है निर्जरा ॥३३॥

वैराग्यजननी राग की विध्वंसनी है निर्जरा।
है साधकों की संगिनी आनन्दजननी निर्जरा॥
तप-त्याग की सुख-शान्ति की विस्तारनी है निर्जरा।
संसार पारावार पार उतारनी है निर्जरा ॥३४॥

निज आतमा के भान बिन है निर्जरा किस काम की।
निज आतमा के ध्यान बिन है निर्जरा बस नाम की॥
है बंध की विध्वंसनी आराधना ध्रुवधाम की।
यह निर्जरा बस एक ही आराधकों के काम की ॥३५॥

इस सत्य को पहिचानते वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है॥
शुद्धातमा की साधना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥३६॥

लोक भावना

निज आतमा के भान बिन षट्द्रव्यमय इस लोक में।
भ्रमरोगवश भव-भव भ्रमण करता रहा त्रैलोक्य में॥
करता रहा नित संसरण जगजालमय गति चार में।
समभाव बिन सुख रञ्च भी पाया नहीं संसार में॥३७॥

नर नर्क स्वर्ग निगोद में परिभ्रमण ही संसार है।
षट्द्रव्यमय इस लोक में बस आतमा ही सार है॥
निज आतमा ही सार है स्वाधीन है सम्पूर्ण है।
आराध्य है सत्यार्थ है परमार्थ है परिपूर्ण है॥३८॥
निष्काम है निष्क्रोध है निर्मान है निर्मोह है।
निर्द्वन्द्व है निर्दण्ड है निर्ग्रन्थ है निर्दोष है॥
निर्मूढ है नीरोग है आलोक है चिल्लोक है।
जिसमें झलकते लोक सब वह आतमा ही लोक है॥३९॥
निज आतमा ही लोक है निज आतमा ही सार है।
आनन्दजननी भावना का एक ही आधार है॥
यह जानना पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥४०॥

बोधिदुर्लभ भावना

इन्द्रियों के भोग एवं भोगने की भावना।
है सुलभ सब दुर्लभ नहीं है इन सभी का पावना॥
हैं महादुर्लभ आतमा को जानना पहिचानना।
है महादुर्लभ आतमा की साधना आराधना॥४१॥
नरदेह उत्तमदेश पूरण आयु शुभ आजीविका।
दुर्वासना की मंदता परिवार की अनुकूलता॥
सत् सज्जनों की संगती सद्धर्म की आराधना।
है उत्तरोत्तर महादुर्लभ आतमा की साधना॥४२॥

जब मैं स्वयं ही ज्ञेय हूँ जब मैं स्वयं ही ज्ञान हूँ।
जब मैं स्वयं ही ध्येय हूँ जब मैं स्वयं ही ध्यान हूँ ॥
जब मैं स्वयं ही आराध्य हूँ जब मैं स्वयं आराधना।
जब मैं स्वयं ही साध्य हूँ जब मैं स्वयं ही साधना ॥४३॥
जब जानना पहिचानना निज साधना आराधना।
ही बोधि हैं तो सुलभ ही है बोधि की आराधना ॥
निज तत्त्व को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥४४॥

धर्म भावना

निज आतमा को जानना पहिचानना ही धर्म है।
निज आतमा की साधना आराधना ही धर्म है ॥
शुद्धातमा की साधना आराधना का मर्म है ॥
निज आतमा की ओर बढ़ती भावना ही धर्म है ॥४५॥
कामधेनु कल्पतरु संकटहरण बस नाम के।
रतन चिन्तामणि भी हैं चाह बिन किस काम के ॥
भोगसामग्री मिले अनिवार्य है पर याचना।
है व्यर्थ ही इन कल्पतरु चिन्तामणी की चाहना ॥४६॥
धर्म ही वह कल्पतरु है नहीं जिसमें याचना।
धर्म ही चिन्तामणी है नहीं जिसमें चाहना ॥
धर्मतरु से याचना बिन पूर्ण होती कामना।
धर्म चिन्तामणी है शुद्धातमा की साधना ॥४७॥
शुद्धातमा की साधना अध्यात्म का आधार है।
शुद्धातमा की भावना ही भावना का सार है।
वैराग्यजननी भावना का एक ही आधार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥४८॥

महावीर वन्दना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।
जो तरण-तारण, भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थङ्कर स्वयं महावीर हैं।।

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में।।
युगपद् विशद् सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में।।

जिनका परम पावन चरित्र, जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावैं पार है।।
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वंदना शत बार है।।

जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है।।
जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्त्ता न धर्त्ता कोइ है, अणु-अणु स्वयं में लीन है।।

आतम बने परमात्मा, हो शान्ति सारे देश में।
है देशना-सर्वोदयी, महावीर के सन्देश में।।

——卐——